

संसदीय प्रणाली के विकल्प की खोज

□ डा० बाबूलाल फड़िया

स्वाधीनता के बाद से भारत का शासन संसदीय ढाँचे की चोक्तन्त्रात्मक व्यवस्था के अंतर्गत संचालित हो रहा है। विगत कुछ वर्षों से देश की राजनीति के क्षेत्र में जो कुछ हो रहा है उससे भास जाता कि मन भारी खोप, ग्लानि और एक विविध-सी क्षिप्तता से भरता जा रहा है। सार्वजनिक जीवन में नैतिक भूत्यों के अवमूल्यन, राजनीतिक दलों के विघटन, आये दिन बल-बदल, बढ़ती हुई धड़लाई एवं सरकारों की अनिश्चितता से ऐसा लगता है कि देश आज राजनीति तथा आर्थिक संवर में फंसा हुआ है। देश भर में लोग राजनीति एवं राजनीतिक दलों की हरकतों से ऊन गये हैं तथा संसदीय लोकतंत्र में उनकी आस्था ही उभसगारी लप रही है। सम्भवतः वर्तमान राजनीतिक स्थिति का यह सबसे निकृष्ट पहलू है। अब राजनीतिक प्रक्रिया में ठहराव आ गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोकतंत्र के और बढ़े पर आ गये हैं।

देश में इस समय यह विचार-जिर्मल चल रहा है कि क्या हमारी प्रचलित संसदीय शासन प्रणाली को अल्पक्षीय शासन प्रणाली में परिवर्तित करने देश को राजनीतिक और आर्थिक संकट से बाहर निकाला जा सकता है? हमारे लोकतंत्र को वर्तमान अनिश्चय की स्थिति में पहुँचानेवाले घटनाक्रम की भूमिका मेरी समझ में अभी तैयार हो गयी जब हमारे संविधान के निर्माताओं ने संसदीय लोकतंत्र की वेस्टमिनिस्टर प्रणाली को हमारे देश के लिए चुना जो कि यूरोपीयन लोगों के अनुशासित तथा व्यावहारिक चरित्र के लिए उपयुक्त है, न कि हमारी जनता के लिए जिसका चरित्र घूलतः व्यक्तिवादी तथा आत्म-केन्द्रित है।

आज अनेक विविधान विशेषज्ञों का स्पष्ट अभिमत है कि शासन में आवश्यक स्थिरता और बृद्धि लाने तथा बल-बदल जैसी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए भारत में अमरीकी ढंग को अल्पक्षीय प्रणाली सबसे अधिक सार्थक सिद्ध हो सकती है। हमारे देश की समस्याओं का स्वरूप मुख्यतः आर्थिक है तथा उसके समाधान के लिए उच्च स्तर की तकनीक और प्रबंध कुशलता की आवश्यकता है, अल्पक्षीय शासन प्रणाली में प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित राष्ट्रपति और राजनीतिकों तथा प्रबंध विशेषज्ञों को मंची पर पद निभुक्त बार राष्ट्रीय समस्याओं का बरतता से हल खोज सकता है।

भारत की प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था में शामिलचूल परिवर्तन की बात कह कर क्या यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि जितनी दूरी की संसदीय प्रणाली में कई कमियाँ और विकृतियाँ हैं जिससे देश कभी भी गम्भीर संकट में घंसा सकता है; जैसे प्रथम समयत एवं उत्तर-दायी प्रतिपक्ष संसदीय व्यवस्था के संचालन की अपरिहार्य प्रात है, किंतु भारत में शासन एवं रचनात्मक प्रविषय का आज तक निर्माण नहीं हो सका। द्वितीय, ब्रिटेन में संघर्ष स्वस्थितमान एवं सम्पन्न है जबकि भारतीय संसद सम्पन्न नहीं है। संसदीय सम्पन्नता के अभाव में संसदीय लोकतंत्र की गाड़ी तीव्र गति से नहीं चल सकती। भारत का सर्वोच्च न्यायालय उसके मार्ग में अवरोध खड़े कर सकता है। तृतीय संघर्ष और राज्य विधानमण्डलों की कार्यप्रणाली का गुणात्मक हास हुआ है, वाद-विवाद का स्तर बढ़ा है। व्यक्तित्वत शोषारोपण और छिद्रावेशन की बड़ती हुई प्रवृत्ति के कारण संसदीय मंच का अग्रभूतत होता रहा है। चतुर्थ, भारतीय

संविधान का उद्देश्य था कि संसद और कार्यपालिका की सत्ता भिन्न रहें, किंतु व्यवहार में उनके कामकाज का विविध और अव्यवस्थीय मिलाप हो गया। विधानमंडल जब तक संसद की स्वीकृति हो, मन्त्रिमण्डल सत्ताश्व रह सकता है, किंतु व्यवहार में मन्त्रिमण्डल और प्रधानमंत्री ने संसद को काम और अधिकार अधिकाधिक शाम में हथिया लिये हैं। वर्तमान पार्टी-पट्टति, पार्टी-अनुशासन एवं दक्षीय निष्ठा के कारण संसद का बर्बा घटता गया; आज संसद केवल सीमित सतर्कता का साधन रह गयी है। पंचम, दल-बदल के कारण हमारा पूरा संसदीय वातावरण ही दूषित हो गया है और मूल्यों की राजनीति के स्थान पर सत्तालुपता की राजनीति का प्रभुत्व हुआ है। दल-बदल के कारण और राज्यों में संसदीय सरकार का संचालन खतरे में पड़ा और लोकप्रिय सरकारों के गठन में बाधा आयी। छठ, नैतिक दूष्यों का अनवरत हास हुआ है। जब राजनीति और राजनीतिकों को काफ़ी कुछ संदेह, अन्याय और विर-रकार की दृष्टि से देशा जाने लगा है। किसी भी प्रतिनिधि लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में ऐसी स्थिति भयावह है जब जगद। के हृदय में उसके अपने बने हुये प्रतिनिधियों की ही निष्ठा और ईमानदारी में विश्वास न रहे। सप्तम, भारत में राजनीतिक दलों की बहुलता संसदीय शासन के सुचारु संचालन में एक बड़ी बाधा सिद्ध हो रही है। राजनीतिक दलों में परस्पर सहयोग एवं सामंजस्य की भावना का अभाव है जिससे सरकार का गठन करना तक कठिन हो जाता है।

संसदीय शासन प्रणाली के अंतर्गत देश में राजनीतिक स्थिरता एवं एकता बनी रह सकती। इसका कारण वसाहदमान नेहरू एवं श्रीमती इन्दिरा गाँधी जैसे करिष-माती नेताओं एवं कपिस जैसे अखिल भारतीय संहरद के चल के हाथों में शासन की जगहबोर मन होना है। क्या देश को हर समय, प्रत्येक परिस्थिति में ऐसा करिषमाती नेतृत्व एवं एक दल प्रधान व्यवस्था उपलब्ध होती ही रहेगी? जनता पार्टी शासन की कामावधि में हम देख चुके हैं कि खिचड़ी दलों का नेतृत्व करनेवाला प्रधानमंत्री देश को वस्थिरता के अक्षीर राजनीतिक संकट की ओर धकेल सकता है।

भारत के लिए अल्पक्षीय शासन प्रणाली अपनाये जाने के पक्ष में कतिपय तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं; प्रथम, इस शासन प्रणाली में सर्वत्र कार्यपालिका कचित एक

निर्वाचित राष्ट्रपति में निहित होती है। राष्ट्रपति का कार्य-काल निश्चित होता है और निर्धारित समय से पूर्व विधायिका उसे आशानी से पदच्युत नहीं कर सकती, जिससे शासन में स्थायित्व जा जाता है। द्वितीय, इस शासन व्यवस्था में राष्ट्रपति योग्यतम, विशेषज्ञ तथा कुशल प्रशासकों को संविधान पर नियुक्त करने में सुविधाजनक स्थिति में रहता है। उसे स्वतन्त्रता रहती है कि अपने मंत्रिमण्डल के सदस्यों की विधायिकों के बाहर के लोगों में से भी चुन सके। हमारे देश की समस्याएँ मूलतः आर्थिक हैं अतः देश की व्यवस्था करना वस्तुतः अर्थव्यवस्था का प्रबंध करना है और इसके लिए उन्वयकोटि के तकनीकी तथा प्रबंध कर्मी ज्ञान एवं अनुभव की आवश्यकता है। अध्याप्रीय शासन प्रणाली इस बुनियादी जरूरत को इस प्रकार पूरा करती है कि राष्ट्रपति, जो स्वयं जनता द्वारा चुना गया राजनीतिक व्यक्ति होता है, अपनी मंत्री-परिवर्त में गैर राजनीतिक और व्यावसायिक विशेषज्ञों का नियम कर सकता है। तृतीय, अध्याप्रीय व्यवस्था की शासन प्रणाली में राष्ट्रपति के सभी प्रशासनिक होते हैं कि प्रेसिडेंट राजनीतिक उनका ध्येय अपने प्रशासनिक विभाग का दक्षतापूर्वक संचालन करना होता है न कि दक्षत राजनीति में अपनी अतिरिक्त दुरुपयोग करना। अतः, इस शासन प्रणाली में बल-बदल या दल-विभाजन की संभावना नहीं रहती बल्कि दल-बदल करने से मंत्रिमण्डल बनने की सुविधा रहती है। अतः, अध्याप्रीय प्रणाली में 'राष्ट्रपति' के निर्वाचन के मुद्दे को लेकर राष्ट्रीय व्यवस्था एवं दृष्टिकोण वाले लोगों का विकास सहज हो जाता है। अंत में संकेत कानीन परिस्थितियों में तुलनात्मक दृष्टि से अध्याप्रीय सरकार अधिक सक्षम तथा प्रभावी होती है।

अध्याप्रीय शासन प्रणाली की चर्चा करते हुए ओटे क्ल में इस समय दो माइल हमारे सामने हैं—अमेरिकी शासन प्रणाली और फ्रेंच राष्ट्रपतिय व्यवस्था। अमेरिकी अध्याप्रीय शासन की विशेषताएँ हैं कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका का एक-दूसरे से पृथक् तथा हर एक का अपना अधिकार क्षेत्र होना, मंत्रिमण्डल का राष्ट्रपति के पूर्णस्व से अश्रित रहना; राजनीतिक व्यवस्था में व्यक्ति केन्द्र का अभाव होना तथा राष्ट्रपति न तो विधान-मण्डल को अंग कर सकता है और न ही उसे अव-

शीलित या बाध्य कर सकता है आदि। परन्तु यह सब सैद्धांतिक व्यवस्था है। वर्तमान समय में ही नहीं, पहले भी कभी इस तरह का शासन संगठन व्यवहार में नहीं रहा है। आज व्यवहार में अमेरिका में कार्यपालिका और विधायिका का अनवरत सम्पर्क बढ़ता जा रहा है। मंत्रिमण्डल राष्ट्रपति का वैयक्तिक पहुँच सहयोगी बनता जा रहा है। राजनीतिक व्यवस्था में अमेरिकी राष्ट्रपति का पद शक्ति केन्द्र के रूप में अवतरित हुआ है। राजनीतिक वर्गों के किशोरियों से अध्याप्रीय प्रणाली की शक्ति पृथक्करण अवधारणा को केवल सैद्धांतिक धारणा में ही परिचित कर दिया है। आज व्यवहार में अमेरिकी मानव शक्ति के पृथक्करण को एक सीमा तक ही अंशिक करता है। और उस सीमा के आगे शक्ति की सार्वभौम स्थापित करता है।

कांस के पाँचवे संविधान की सुझाव है—स्थिरता और प्राधिकार। इसका ध्येय वस्तुतः मंत्रिमण्डलीय तथा शासन की स्थिरता को दूर करना है। कार्यपालिका की विधायिका से पृथक् करने का प्रयास किया गया है। राष्ट्रपति का निर्वाचन संसद द्वारा न होकर एक निर्वाचक मण्डल द्वारा होता है। राष्ट्रपति को बल्कि नैयतिक अधिकार दिये गये हैं, जिसका प्रयोग वह स्वविक्रम से करता है। तथा जिससे संबंधित आदेशों पर मंत्रियों के हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं है। राष्ट्रपति ही मंत्रिमण्डल तथा प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है। मंत्रियों की संसद की सदस्यता से बंधित किया गया है। किंतु उन्हें संसद की प्रति उत्तरदायी बना दिया गया है। प्रधानमंत्री की सलाह से राष्ट्रीय सभा को शंग करने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है। राष्ट्रपति को अवातकानीय शक्तियों की गयी हैं, जिसका निर्णायक वह स्वयं है। वस्तुतः कांस के वर्तमान संविधान में राष्ट्रपति संविधानिक अंग का निर्णायक हो गया है। वह राष्ट्र का वास्तविक अध्यक्ष, राष्ट्र का प्रतीक शासन का प्रमुख और राष्ट्रीय पंच के तुल्य बना दिया गया है। जबकि प्रधानमंत्री राष्ट्रपति का एजेन्ड-मा प्रतीक होता है। कांस के इस पाँचवे संविधान का मुख्य उद्देश्य मंत्रिमण्डलीय अस्थिरता को दूर करना था, क्योंकि इसके पूर्व फ्रेंच मंत्रिमण्डल का औसत जीवन काल नौ मास से भी कम होता था।

भारत जैसे विकासशील देशों के लिए अमेरिकी माइल

की अनेका फ्रेन्च भाइय एक त्रिफल्य प्रस्तुत करता है और विकासशील देशों में इसके अनुसरण की अधिक सम्भावनाएं हैं। तीन वर्ष पूर्व श्रीलंका ने ऐसी ही शासन व्यवस्था को अपनाया है। अमरीकी माडल की कई दुर्बलताएं हैं जिन्हें भारतीय संदर्भ में पचाना सम्भव नहीं होगा। शक्तियों के पुनर्ककरण के कारण अमरीकी शासन व्यवस्था में क्षति और उत्तरदायित्व का ऐसा विभाजन हो जाता है कि शासन, नीति और कार्यों के लिए किसी का निरपेक्ष उत्तरदायित्व नहीं रह पाता। अमरीकी शासन प्रणाली में व्यवस्थापिका का और कार्यपालिका का विरोध उक्त अवस्था में असाध्य हो जाता है जब राष्ट्रपति वद पर और सीनेट में अल्प-जंजल दलों का प्रभुत्व हो। यह व्यवस्था संसदीय प्रणाली की भांति लचीली तथा परिवर्तनशील भी नहीं है। फिर हम सभी इसी तथ्य से परिचित हैं कि अमरीकी शासन प्रणाली वास्तु में बहुत सेटिन अमेरिका के कई देशों में अक्षय्य सिद्ध हो चुका है। ऐसी स्थिति में इस बात की क्या जरूरत है कि भारत में यदि अमरीकी माडल के लोक-संघ का प्रतीक्षण किया गया तो वह सफल हो ही जायेगा ? अतः तो अमेरिका में भी कहीं-कहीं इस बात की भांग की जा रही है कि अध्याधीन ढांचे में ऐसे संशोधन किये जायें ताकि वह 'मिनिममडमी सरकार' के अनुरूप कार्य कर सकें।

भारत की राजनीतिक विरासत की यह विशेषता है कि वह ऐसे किसी भी शासन प्रतिमान (माडल) को पसन्द कर लेगी जिसमें स्थायित्व और उत्तरदायित्व को मिलाते का प्रयत्न किया गया हो। प्रत्येक प्रतिमान की यह विशेषता है कि उत्तरदायित्व को व्यवस्था करने के लिए संविधान गणतंत्रात्मक संसदीय शासन स्थापित करता है तथा कार्यपालिका के स्थायित्व के लिए अध्याधीन शासन को संसदीय शासन पर प्रतिरोधित कर देता है। क्या भारत के लिए किंच माडल बनाना सफल होगा ?

प्रायः आशंका व्यक्त की जाती है कि अध्याधीन शासन प्रणाली राष्ट्रपति को असाधो से तानाशाह बनने का मौका देती है। यह आशंका निराधार है बशर्ते संविधान में आवश्यक प्रतिबंधों तथा ऐसी बातों का समावेश हो जो इस प्रकार की स्थिति को रोक सकें जैसा कि अमरीकी, जर्मन और फ्रांसीसी प्रणालियों में है। वस्तुतः यह अध्याध्यात्मक प्रणाली भी लोक-तन्त्रात्मक व्यवस्था का एक ही प्रति-रूप है और भारत में इसके स्थापना से लोकतन्त्र की दृष्टि पर कोई आंच नहीं आनेवाली है। □